शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अप्रैल 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अज्ञेय : व्यष्टि और समष्टि संबंधी मान्यताएं

किरन तिवारी (शोधार्थी)
डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र (निर्देशक)
गोवा विश्वविद्यालय
गोवा, भारत

शोध संक्षेप

अज्ञेय प्रयोगवाद के संस्थापक और आधुनिक युग के प्रणेता कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में व्यष्टि और समष्टि तथा दोनों के मध्य संबंध में एक नयापन दिखाई देता है। प्रगतिवादी कवियों ने जहां केवल समष्टि को महत्व दिया वहीं प्रयोगवादी कवि अज्ञेय ने व्यष्टि को अपनी कविता का आधार बनाया। प्रस्तुत शोध पत्र में अज्ञेय के व्यष्टि और समष्टि संबंधी विचारों का विश्लेषण किया गया है।

व्यष्टि और समष्टि

अज्ञेय की व्यष्टि और समष्टि संबंधी मान्यताओं को समझने के लिए इनका शब्दकोश गत अर्थ समझना आवश्यक है। हिंदी शब्दकोश के अनुसार -'व्यष्टि' का अर्थ है- "समष्टि का सदस्य या व्यक्ति[1]" एवं समष्टि का अर्थ है- १-"सामूहिकता २- समवेत सत्ता"[2]। अंग्रेज़ी शब्दकोश में व्यक्ति को 'Person[3]" कहते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ है- 'An individual human being[4]" तथा समाज को अंग्रेज़ी में- 'Society[5]" कहते हैं जिसका तात्पर्य है- People living together in an ordered community। २- a community of people living in a country or region and having shared customs, laws and organizations[6]। इन शब्दकोशगत अर्थ के आधार पर हम कह सकते हैं कि जब व्यक्तियों का एक समुदाय आपस में मिलकर एक स्थान पर रहता है और अपने रीति-रिवाजों , क्रिया-कलापों, प्रथाओं आदि का एक-दूसरे के साथ व्यवहार करता है तब एक समाज का निर्माण होता है।

समाज की परिभाषा देते हुए समाजशास्त्री मैकाईवर ने कहा है- "Society is a system of usages and procedures, of authority and mutual aid, of many groupings and divisions, of controls of human behavior and of liberties. This ever-changing, complex system we call society. It is the web of social relationships."[7] इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि समाज प्रयोगों और प्रक्रियाओं की , अधिकार और परस्पर सहायता की, कई समूहों और श्रेणियों की , मानव व्यवहार के स्वतंत्रताओं और नियंत्रण की एक व्यवस्था है। साथ ही यह एक परिवर्तनशील और जटिल प्रणाली है। मैकाईवर के अनुसार यह (समाज) सामाजिक संबंधों का जाल है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्ति और उसके संबंध ही समाज की रचना करते हैं। तात्पर्य यह है कि समाज अनेक प्रकार के सामाजिक-संबंधों पर आधारित होता है। इसमें अपनत्व की भावना होती है।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

वस्तुत: व्यक्ति और समाज में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। दोनों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। अत: उक्त मतों के द्वारा यह ज्ञात होता है कि व्यक्तियों से मिलकर समाज का निर्माण होता है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं।

समाज के संबंध में अज्ञेय का मत है- "समाज से अभिप्राय है वह परिवृत्ति जिसके साथ व्यक्ति किसी प्रकार का अपनापा महसूस करे। xxxx समाज की इयत्ता अंततोगत्वा समाजत्व की भावना पर आश्रित है। यदि किसी कारण हम अपनी परिवृत्ति से सामाजिक संबंध नहीं महसूस करते तो वह हमारा समाज नहीं है , यदि किसी दूसरी परिवृत्ति से वैसा संबंध मानते हैं तो वह हमारा समाज है।"[8] अज्ञेय उसे समाज के रूप में स्वीकार करते हैं जिसमें व्यक्ति का समाज से लगाव हो। व्यक्ति और समाज में अपनत्व का भाव न होने पर व्यक्ति समाज से संबंध नहीं जोड़ पाता और तब वह स्वयं को समाज से अलग पाता है। वे व्यष्टि और समष्टि को इसी दृष्टि से परखते हैं।

अज्ञेय की व्यष्टि -समष्टि संबंधी मान्यताएं

अज्ञेय व्यष्टि और समष्टि के परस्परिक संबंधों को स्वीकारते हुए भी व्यष्टि को प्राथमिकता देते हैं। उनके विचार में व्यक्ति का स्थान समाज से पहले है। इस संबंध में उनकी दृष्टि मूल्यपरक है। वे व्यक्ति को मूल्यों का स्रष्टा इस मानते हैं। उनका विचार है कि "मनुष्य मूल्यों की सृष्टि करता है। सिर्फ़ पहचानता नहीं है कि मूल्य है , वह रचता है उन मूल्यों को। निरंतर उसके मूल्य भी विकसित होते जाते हैं जैसे वह विकसित होता जाता है। एक मूल्य के बदले वह उस बड़े या व्यापक या ज्यादा बड़े समाज के लिए कल्याणकारी मूल्य की अवधारणा करता है। यही उसकी उन्नति है, यही उसकी शक्ति है: कि वह मूल्यों की अवधारणा करता है और इतने बड़े मूल्य बनाता है कि उसके सामने स्वयं अपने को छोटा करता है।"[9]

अज्ञेय के इस कथन से ज्ञात होता है कि वे व्यक्ति को सृष्टि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई मानते हैं। इतना ही नहीं वे व्यक्ति को भगवान सा मान लेते हैं और कहते हैं- "भीड़ों में/ जब-जब जिस-जिस से आंखें मिलती हैं /वह सहसा दिख जाता है/ मानव/ अंगारे-सा -भगवान-सा/ अकेला।"[10]। इस संबंध में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन है कि "वे मानव शक्ति को अंतत: पूज्य मानते हैं। उसी के प्रति नमित और अर्पित होते हैं"[11]।

अज्ञेय व्यक्ति के व्यक्तित्व को महत्ता प्रदान करते हैं। उनका मत है कि "व्यक्तित्व का बनना ही मनुष्य का मनुष्य बनना है" [12]। उनकी कविताओं में व्यक्तित्व खोज की जिज्ञासा दिखाई देती है - "यों मत छोड़ दो मुझे , सागर/ कहीं मुझे तोड़ दो , सागर/ कहीं मुझे तोड़ दो। मेरी दीठ को और मेरे हिए को/ मेरी वासना को और मेरे मन को।/ मेरे कर्म को और मेरे मर्म को/ मेरे चाहे को और मेरे जिए को मुझको और मुझको और मुझको/ कहीं मुझसे जोड़ दो" [13]। उनकी दृष्टि में वही व्यक्ति है जिसे अपने व्यक्तित्व की पहचान होती है।

यद्यपि अज्ञेय व्यक्ति में अधिक रुचि रखते हैं परंतु समाज की सत्ता को नकारते नहीं हैं। व्यक्तियों की समवेत सत्ता से ही समाज का निर्माण होता है। अज्ञेय समाज के प्रति भी सचेत दिखते हैं। अज्ञेय अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में घटित हो रहे अत्याचारों को दूर करना चाहते हैं। प्रत्येक के साथ वे न्याय चाहते हैं और कहते हैं- "यह जो मिट्टी गोड़ता है , कोदई खाता

है और गेहूं खिलाता है/ उस की मैं साधना हूं/ यह जो मिट्टी फोड़ता है, मड़िया में रहता है और महलों को बनाता है/ उसकी मैं आस्था हूं"[14]। यहां कवि शोषितों के प्रति अपनी आस्था प्रकट कर समाज की असमानता को मिटा देना चाहता है। लेकिन अज्ञेय की इन अवधारणाओं में अंतर्द्वन्द्व और सामंजस्य दोनों की स्थिति दिखाई देती है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कविता 'नदी के द्वीप' में समाज और व्यक्ति के मध्य अंतर्द्वन्द्व और अंतर्संबंध दोनों दृष्टिगोचर होता है- "हम नदी के द्वीप हैं।/ हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोत वाहिनी बह जाए। /वह हमें आकार देती है। /हमारे कोण , गलियां, अंतरीप, उभार, सैकत कूल /सब गोलाइयां उस की गढ़ी हैं /मां है वह। /है, इसी से हम बने हैं"[15]।

यहां अज्ञेय स्वीकार करते हैं कि समाज ने ही हमें गढ़ा है। उसी ने हमें आकार प्रदान किया है। कहने का अर्थ है कि व्यक्ति के विकास में समाज रोड़ा नहीं है बल्कि वह संस्कारों के सांचे में गढ़कर हमें समाज में रहने योग्य बनाता है। लेकिन वह यह भी कहते हैं कि - "किन्तु हम हैं द्वीप। /हम धारा नहीं है। /स्थिर समर्पण है हमारा। /हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के /किन्तु हम बहते नहीं है /क्योंकि बहना रेत होना है। /हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं। /xxxxxxx /हम नदी के पुत्र हैं। /बैठे नदी के क्रोड़ में। /वह बृहद भूखंड से मिलाती है। और भूखंड अपना पितर है"[16]।

अज्ञेय यह तो स्वीकार करते हैं कि नदी के द्वारा ही उसका निर्माण हुआ है, उसी के कारण उसने यह आकार पाया है किन्तु फिर भी वह नदी नहीं है बल्कि उसका अपना पृथक अस्तित्व है। इसलिए वे मानते हैं कि हमारा नदी के प्रति समर्पण तो है किन्तु बहना हमें स्वीकार नहीं क्योंकि बहने से हमारा अस्तित्व ही मिट जाएगा। उनका यही मत व्यष्टि और समष्टि दोनों के संबंध को एक नया संदर्भ प्रदान करता है।

अज्ञेय का मत है कि व्यक्ति का विकास तभी संभव है जब उसके मूल्यों की रक्षा हो और इन मूल्यों की रक्षा का कार्य समाज करता है। इस तरह समाज और व्यक्ति में अन्योन्याश्रिता का संबंध स्थापित होता है परंतु यह संबंध भी एक मूल्य है जिसका सृजनकर्ता व्यक्ति ही है। उनका कथन है- "समाज और व्यक्ति की परस्पर-निर्भरता भी उन मूल्यों में से एक है जिसका स्रष्टा और प्रतिष्ठाता मानव है। यह परस्परता विवेक पर आश्रित है और स्वतन्त्रता के आधारभूत मूल्य की रक्षा और उसके विकास के लिए भी वांछनीय है। मानव मूल्यों का स्रष्टा है अर्थात मानव मात्र मूल्यों का स्रष्टा है"[17]।

अज्ञेय के लिए व्यक्ति की स्वाधीनता एक परम मूल्य है। उसकी स्वतन्त्रता में बाधा उन्हें स्वीकार नहीं थी। उनकी मान्यता है कि जब व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व हो तभी वह विकास करता है लेकिन फिर भी उन्हें यह स्वीकार करना पड़ता है कि समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिए कहीं न कहीं आवश्यक है तभी तो वह कहते हैं- "यह दीप अकेला स्नेह भरा /है गर्व-भरा मदमाता /पर इस को भी पंक्ति को दे दो"[18]।

यह 'दीप' व्यक्ति का प्रतीक है जो एक आधुनिक संदर्भ प्रस्तुत करता है। यहां यह दीप अकेला ही स्नेह और गर्व से भरा है फिर भी इसे पंक्ति को देने की अज्ञेय मांग करते हैं। यह पंक्ति समाज है। यहां अज्ञेय का व्यक्तिवाद समाज में विसर्जित हो जाता है। अत: अज्ञेय को समाज विरोधी नहीं समझा जाना चाहिए। यह ठीक है कि वे व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारते

हैं लेकिन समाज से उसके संबंध को अस्वीकार नहीं करते।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि अज्ञेय समाज और व्यक्ति को एक दूसरे का विरोधी न मानकर पूरक मानते हैं। रमेश ऋषिकल्प का मत है- "अज्ञेय व्यक्ति और समाज के संबंध को एक प्राकृतिक संबंध मानते हैं। उनके अनुसार यह प्राकृतिक संबंध ही एक दूसरे के लिए अनिवार्य है"[19]।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल हिन्दी शब्द कोश, 805

2 डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल हिन्दी शब्द कोश, 764

3 डॉ. हरदेव बाहरी राजपाल अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश, 507

4 Catherine Soanes with Sara Hawker and Juliya Elliott, Pocket dictionary Oxford English, 669

5 डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश, 713 / 2012

6 Catherine Soanes with Sara Hawker and Juliya Elliott, Pocket dictionary Oxford English, 865/ Tenth

7 MacIver,R.M.,and Page,C.H, Society, 5/Macmillan and Co,London,1962

8 अज्ञेय, सर्जन एवं संदर्भ, 45 /द्वितीय, 2004

9 कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, 215, 216/ 2012

10 अज्ञेय, अरी ओ करूणा प्रभामय, 161

11 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अज्ञेय, 65/1994

12 कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, 234

13 अज्ञेय, सदानीरा-2 ,277/ दूसरा संशो, सं.2003

14 अज्ञेय, सदानीरा-1, 283

15 अज्ञेय, सदानीरा-1, 252/ दूसरा

16 अज्ञेय, सदानीरा- 1, 252/ दूसरा

17 अज्ञेय, केंद्र और परिधि, 152/ द्वितीय, 2005

18 अज्ञेय, बावरा अहेरी, 61/ सातवां 2001

19 रमेश ऋषिकल्प, अज्ञेय की कविता परंपरा और प्रयोग, 39/प्रथम 2008